इकाई 3 सूर्यग्रहण विमर्श

इकाई की रूपरेखा

3.1 उद्देश्य

3.2 प्रस्तावना

3.3 सूर्यग्रहण विमर्श

- 3.3.1 सूर्यग्रहण परिचय
- 3.3.2 सूर्यग्रहण का संभावासम्भव विचार
- 3.3.3 लम्बन एवं नति विमर्श

3.4 सूर्य ग्रहण के विभिन्न अवयव

- 3.4.1 सूर्य ग्रहण साधन की गणितीय प्रक्रिया

3.5 सारांश

3.6 शब्दावली

3.7 संदर्भ ग्रन्थ

3.8 बोध/ अभ्यास प्रश्न

3.1 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से आप निम्नलिखित विषयों के बारे में विशेष ज्ञान प्राप्त करेंगे –

- ज्योतिष शास्त्र के अनुसार सूर्यग्रहण के स्वरूप से अवगत होंगे।
- सूर्यग्रहण होने के मुख्य कारण से अवगत हो पाएंगे।
- सूर्यग्रहण के विभिन्न भेदों से अवगत हो पाएंगे।
- सूर्यग्रहण के मुख्य वैज्ञानिक अंशों से अवगत हो पाएंगे ।
- सूर्यग्रहण में लम्बन एवं नति की उत्पत्ति के कारण तथा उनके विषय में विशेष ज्ञान प्राप्त करेंगे।
- प्रत्येक अमावस्या को सूर्यग्रहण क्यों नहीं होता है, इसके सैद्धान्तिक कारण को जान पाएंगे।
- ज्योतिष के अनुसार सूर्यग्रहण के गणितीय सूत्र को जानेंगे।

3.2 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई का शीर्षक **"सूर्यग्रहण विमर्श"** है। आप सभी की ज्योतिष शास्त्र में विशेष रुचि हैं ऐसा मेरा पूर्ण विश्वास है। इससे पूर्व आप ज्योतिष शास्त्र के अर्थ एवं महत्व आदि विषयों का गंभीर अध्ययन कर चुके हैं। साथ ही साथ **"ग्रहण"**नामक विषय से भलीभाँति परिचित हैं।

हम सभी जानते हैं कि **गृह्यतेऽनेन इति ग्रहणम् "** अर्थात् किसी एक वस्तु के द्वारा किसी अन्य वस्तु का ग्रहण कर लेना या आच्छादन करना या ढँक लेना या अवरोध उत्पन्न कर लेना ही एक वस्तु या पदार्थ के लिए अन्य वस्तु या पदार्थ का ग्रहण है। हम सभी ज्योतिष शास्त्र का अध्ययन करते हैं तथा उसी के परिप्रेक्ष्य में इन विषयों को भी समझते अतः कोई खगोलीय ग्रह किसी अन्य ग्रह को ग्रहण कर लेता है, या अवरोध उत्पन्न करता है तो उसे ही ग्रहण कहा जाता है। वस्तुतः आकाश में ग्रहण से तात्पर्य दो ग्रहों का परस्पर पूर्वापर एवं याम्योत्तर अंतर का अभाव होने से है। तीसरा अंतर भी ग्रहों में होता है जिसे ऊर्ध्वाधर अंतर कहा जाता है। परंतु यह अंतर सर्वदा विद्यमान रहता हैं क्योंकि ग्रहों का भ्रमण मार्ग या कक्षाएं पृथक पृथक है अर्थात् एक दूसरे से ऊर्ध्वाधर है। अतः यह अंतर हमेशा रहता ही है, परंतु पूर्वापर एवं याम्योत्तर अंतर शून्य या अत्यंत कम होता रहता है। ग्रहण सभी ग्रहों का परस्पर एक दूसरे से होता रहता है परंतु शास्त्रों मे मुख्यत दो ग्रहणों का ही विमर्श अधिक किया गया है -1- चन्द्रग्रहण, एवं – 2 सूर्य ग्रहण। प्रस्तुत इकाई के माध्यम से हम सूर्यग्रहण के विभिन्न पक्षों से अवगत होंगे।

3.3 सूर्यग्रहण विमर्श

ज्योतिष शास्त्र को ग्रह नक्षत्रों के बारे में अध्ययन करने वाला शास्त्र कहा जाता है। अर्थात् जिस शास्त्र में ग्रहों-उपग्रहों की गति इत्यादि का चिंतन किया जाता है उसे ज्योतिष शास्त्र कहते हैं। ज्योतिष शास्त्र का वर्गीकरण तीन स्कंधों में किया गया है यथा - सिद्धान्त, संहिता एवं होरा। इन तीनों स्कंधों में विभिन्न खगोलीय विषयों का तथा उनका चराचर जगत पर पड़ने वाले प्रभाव का चिंतन किया जाता है। इन्हीं खगोलीय विषयों मे से प्रमुख विषय है ग्रहण जिसके बारे में विस्तृत रूप से हमने पूर्व के अध्यायों में अध्ययन किया तथा इसके मुख्य दो भेद होते हैं इसके बारे में भी हमने जाना यथा ग्रहण के दो भेद सूर्य ग्रहण एवं चन्द्र ग्रहण। चन्द्र ग्रहण का विचार क्यों किया जाता है तथा चन्द्र ग्रहण के विषय में विस्तृत रूप से हमने **"चन्द्रग्रहण विमर्श"** नामक अध्याय में अध्ययन किया। प्रस्तुत अध्याय में हम सूर्य ग्रहण के बारे में विस्तृत रूप से अध्ययन करेंगे अर्थात् इसके विभिन्न पक्ष जैसे क्यों शास्त्रों में सूर्य ग्रहण का विचार किया गया है ? इसकी गणितीय प्रक्रिया, सूर्य ग्रहण का सैद्धान्तिक स्वरूप, पौराणिक स्वरूप, तथा इसके विभिन्न अवयव, एवं सूर्य ग्रहण में विशेष रूप से विचारणीय लम्बन एवं नति आदि के बारे में हम विस्तृत रूप से अध्ययन करेंगे।

3.3.1 सूर्यग्रहण परिचय

"गृह्यतेऽनेन इति ग्रहणम्"। अर्थात् किसी एक पदार्थ के द्वारा किसी अन्य पदार्थ का ग्रहण करना या आच्छादन करना या ढँक लेना या अवरोध उत्पन्न करना ही ग्रहण है। अर्थात् ग्राहक बिम्ब के द्वारा ग्राह्य बिम्ब का आच्छादन करना ही ग्राह्य बिम्ब का ग्रहण होना कहलाता है क्योंकि उसका प्रकाश अन्य स्थान पर ग्राहक बिम्ब के अवरोध के कारण नहीं पहुँचता है इसी अवस्था को हम ग्रहण कहते हैं। वस्तुतः आकाश में ग्रहण से तात्पर्य दो ग्रहों का परस्पर पूर्वापर एवं याम्योत्तर अंतर का अभाव होने से है। हम सभी जानते हैं कि आकाश में प्रायः सभी ग्रहों पिंडों का ग्रहण एक दूसरे से होता रहता हैं, परंतु मुख्य रूप से शास्त्रों में ग्रहण दो ग्रहों के माने जाते हैं 1- सूर्य ग्रहण एवं 2- चंद्र ग्रहण। पृथ्वी का भी ग्रहण होता हैं किन्तु वह हमें दृष्टिगोचर नहीं होता है इसीलिए इसका विचार सामान्य जनों के लिए नहीं किया गया है। यदि

कोई सूर्य पृष्ठ पर रहेगा तो अवश्य ही वह पृथ्वी के ग्रहण को देख सकता है, परंतु सूर्य का तेज इतना होता है की उस पर किसी का होना संभव ही नहीं हैं। चन्द्र ग्रहण का विचार क्यों किया जाता है इसके बारे में हमने पूर्व के अध्याय में जाना।

सूर्य ग्रहण का विचार शास्त्रों में इसलिए किया जाता हैं क्योंकि सूर्य का महत्व अत्यधिक है। सूर्य को संसार की आत्मा कहा जाता है यथा "सूर्यः आत्मा जगतः"। वस्तुतः सूर्य के प्रकाश से ही सारा संसार प्रकाशित होता है। ग्रह तथा उपग्रह भी सूर्य के प्रकाश के कारण ही प्रकाशित होते हैं। कहा जाता है कि –

तेजसां गोलकः सूर्यः ग्रहर्क्षाण्यम्बुगोलकाः।
प्रभावन्तो हि दृश्यन्ते सूर्यरश्मिप्रदीपिताः।।[1]

हम सभी जानते है कि प्रकाश की अवस्था में ही किसी वस्तु का होना या न होना हम देख सकते हैं अंधेरे में किसी का होना या न होना हम नहीं देख सकते। इसी प्रकाश का प्रमुख आधार या मूल सूर्य ही है। सूर्य के बिना ब्रह्माण्ड की कल्पना भी असंभव है। इसी सूर्य के कारण हम सभी दिन रात्रि की व्यवस्था को अनुभूत करते हैं। साथ ही साथ सूर्य का इसका लौकिक एवं आध्यात्मिक महत्व शास्त्रों में बताया गया है इसी कारण हमारे शास्त्रों में सूर्य ग्रहण के विषय में पर्याप्त विचार किया गया है। सूर्यग्रहण शराभाव अमान्त में होता है। सूर्य ग्रहण में छाद्य सूर्य तथा छादक चन्द्र होता है। सूर्य ग्रहण में विशेष रूप से लंबन एवं नति का विचार किया जाता है जिसके बारे में हम इसी अध्याय में अग्रिम बिन्दु के माध्यम से अध्ययन करेंगे।

सूर्य ग्रहण का चित्र–

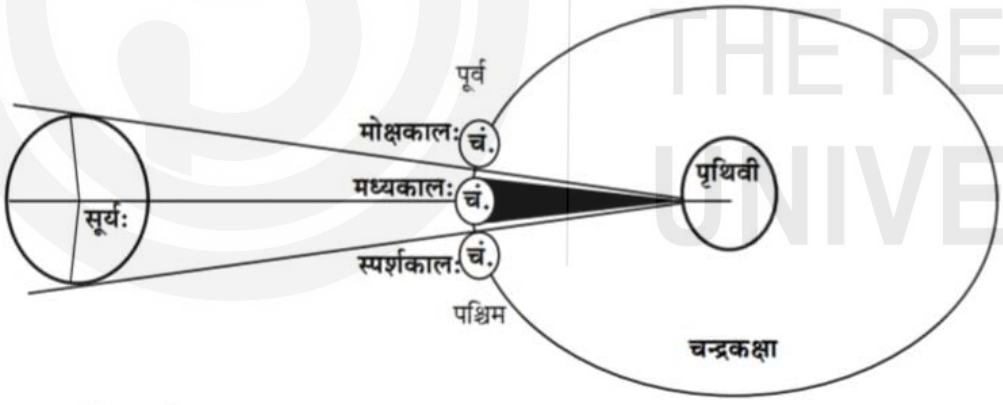

3.3.2 सूर्यग्रहण का संभवासम्भव विचार

हमने पूर्व की इकाई के माध्यम से जाना कि ग्रहण कब होगा अर्थात् चन्द्र ग्रहण की संभावना कौन सी पूर्णिमा एवं सूर्य ग्रहण की संभावना कौन सी अमावस्या को होती है इसका विचार करना ही संभावासम्भव विचार के नाम से जाना जाता है। साथ ही साथ यह भी जाना कि प्रत्येक पूर्णिमा को चन्द्र ग्रहण नहीं होता है। इसके विषय में विस्तृत रूप से अध्ययन किया। प्रस्तुत इकाई के माध्यम से हम सूर्य ग्रहण कब हो सकता है अर्थात् उसकी संभावना का विचार हम करेंगे। अर्थात् प्रत्येक अमान्त को सूर्य ग्रहण क्यों नहीं होता है इसके सैद्धान्तिक कारण के

[1] **सिद्धान्ततत्वविवेकः, बिम्बाधिकारः, श्लोकसंख्या -03**

बारें में हम विस्तृत अध्ययन करेंगे। हम सभी जानते हैं कि ग्रहण में ग्राह्य एवं ग्राहक का योग होना आवश्यक है और यह योग ग्राह्य और ग्राहक के अंतराभाव से है। ग्रहों का अंतराभाव तीन प्रकार से होता है 1- पूर्वापर अंतर, 2- याम्योत्तर अंतर , 3- ऊर्ध्वाधर अंतर।

हमने जाना कि भूकेन्द्रिक नियमानुसार ग्रहों की कक्षा ऊर्ध्वाधर है जिससे ग्राह्य एवं ग्राहक का ऊर्ध्वाधर अंतर शून्य कभी नहीं हो सकता। एवं केवल पूर्वापर अंतर (राश्यादि मान से समान पूर्णिमा या अमावस्या की स्थिति) शून्य होने पर भी प्रति पूर्णिमा या अमावस्या को ग्रहण नहीं होता है। पूर्वापर अंतर के साथ साथ याम्योत्तर (उत्तर –दक्षिण) अंतर अर्थात् शराभाव होने पर ही ग्रहण संभव होता है। ग्रहण में पात का विशेष महत्व होता है।

सामान्यतः ग्रहण के कारण का मूल तथ्य दो छायाग्रहों राहू व केतू से है जो अपनी छाया में ग्रसित करते हैं उसी को हम ग्रहण के नाम से जानते हैं। वास्तव में ये भौतिक पिंड न होकर क्रान्ति वृत्त पर दो बिन्दु हैं। जिनका मान या स्थिति गणितीय प्रक्रिया के द्वारा प्राप्त किया जाता है। इन बिन्दुओं का भूमंडलीय जीवन पर अत्यधिक प्रभाव माना जाता है क्योंकि इन स्थानों से भी अन्य ग्रहों के समान पृथ्वी पर गुरुत्वाकर्षण बल लगता है। चन्द्र विमण्डल वृत्त एवं क्रान्ति वृत्त के पूर्वी संपात को राहू तथा उस संपात से 180^0 की दूरी पर दूसरा संपात केतू नाम से जाना जाता है। हमेशा राहू एवं केतू की विलोम गति होती है, क्योंकि दो वृत्तों के संपात बिन्दु हमेशा विपरीत ही गति करते हैं यह हम सामान्य रूप से दो चूड़ियों के परस्पर संपात बिन्दु से जान सकते हैं। इसी संपात बिन्दु के आसन्न पूर्णिमा होने पर चन्द्र ग्रहण होता है। तथा इसी संपात बिन्दु के आसन्न अमान्त होने पर सूर्य ग्रहण होता है। इस संपात बिन्दु से कितनी दूर तक पूर्णिमान्त या अमान्त हो तो ग्रहण हो सकता है इसी अंतर को भुजांश के नाम से जाना जाता है। भुजांश की सैद्धान्तिक परिभाषा एवं स्वरूप को हमने विस्तृत रूप से पूर्व की इकाई में जाना।

सूर्यग्रहण की संभावना हेतु आचार्य भास्कर ने 7 अंश से कम भुजांश माना है यथा –

पाताद्ध्यार्कभुजांशकाः यदि नगोनाः स्युस्तदार्कग्रहः।[2]

अर्थात् सपात सूर्य का भुजांश 07 अंश से कम हो तब सूर्य ग्रहण होता है। सिद्धान्त के अनुसार जब ग्राह्य और ग्राहक बिंबों के मानैक्यार्द्ध तुल्य जब चंद्रमा का शर होता है तब ग्रहण का स्पर्श मात्र होगा, एवं मानैक्यार्द्ध से शर मान कम होगा तो निश्चित ही ग्रहण होगा एवं मानैक्यार्द्ध से शर मान अधिक होगा तो ग्रहण नहीं होता है । इसलिए ग्रहण में सर्वप्रथम शर ज्ञान की आवश्यकता होती है। शर का तात्पर्य ग्राह्य एवं ग्राहक बिंबों का याम्योत्तर रूपी केंद्रान्तर हैं। पातस्थान से अर्थात् ग्राह्य एवं ग्राहक बिंबों के भ्रमण वृत्तों के संपात स्थान से उत्तर दक्षिण रूपी शर की प्रवृत्ति होती है तथा पात स्थान से 3 राशि की दूरी पर परम शर होता है। इसी सिद्धान्त के द्वारा ग्राह्य एवं ग्राहक बिम्बार्द्धों के तुल्य शर स्थल का ज्ञान करके ग्रहण संभावासम्भव का निर्धारण किया जाता है। सूर्य का कलात्मक बिम्ब मान 32 है तथा चंद्रमा का कलात्मक बिम्ब मान 32 है। इनका मानैक्यार्द्ध 32 कला (32 + 32 / 2 = 64/2 = 32) होता है। इस मानैक्यार्द्ध के तुल्य शर से भुजांश का ज्ञान करते हैं। हम सभी जानते हैं कि क्रान्ति वृत्त और चंद्र विमण्डल वृत्त का परमान्तर संपात स्थान से 270 कला होता है। इसके आधार पर त्रैराशिक अनुपात किया जाता है कि यदि परमशरज्या में त्रिज्या तुल्य भुजज्या प्राप्त होती है तो मानैक्यार्द्धतुल्य शरज्या में स्पर्शयोग्यविपातसूर्यभुजज्या = त्रिज्या x मानैक्यार्द्ध / परमशरज्या।

[2] सिद्धान्तशिरोमणि, पर्वसंभावाधिकार,श्लोक 3

अतः 3438 × 32 / 270 = 407 कला (स्वल्पान्तर से ज्या चाप के मध्य अभेद मानकर)। इसका चाप करने से 7 अंश स्पर्श योग्य भुजांश। मध्यम एवं स्पष्ट सूर्य का परम अंतर 2 अंश 30 कला होता है। अतः 70 + 20-30I = 90-30I यह स्पर्श योग्य भुजांश का मान होता है। एवं इसमें से यह मान घटाने पर 70 - 20-30I = 40-30I इतने भुजांश पर निश्चित ही सूर्य ग्रहण होता है क्योंकि उस समय ग्राह्य और ग्राहक बिम्ब का पूर्वापर एवं याम्योत्तर अंतर अत्यंत कम होगा जिससे कि पूर्ण ग्रहण की स्थिति बनेगी। अतः जब भी संपात स्थान के आसन्न अमावस्या होगी वैसी ही परिस्थिति में सूर्य ग्रहण होगा अन्यथा सामान्य अमावस्या की स्थिति में सूर्य ग्रहण नहीं होगा। अर्थात् जब सूर्य एवं चंद्रमा का मान राहू एवं केतू के लगभग समीप का हो तो वैसी अमावस्या की स्थिति में सूर्य ग्रहण होता है।

इसीलिए कहा जाता है कि –

पाताद्ध्यार्कभुजाशकाः यदि नगोनाः स्युस्तदार्कग्रहः।[3]

सूर्य ग्रहण संभवासंभव का आधुनिक स्वरूप – सामान्यत: एक वर्ष में अधिकतम 7 ग्रहण हो सकते हैं, जिसमें अधिकतम 3 चन्द्र ग्रहण हो सकते हैं एवं चार सूर्य ग्रहण। कभी-कभी 5 सूर्य ग्रहण भी एक वर्ष में हो जाते है वैसी स्थिति में उस वर्ष 2 चन्द्र ग्रहण होंगे। इस तथ्य के अनुसार सूर्य ग्रहण हेतु भुजांश का आधुनिक मान स्वीकार किया जाता है। जिससे ही यह मान संभव है अन्यथा नहीं। सूर्य ग्रहण की संभावना हेतु आधुनिक स्पर्श योग्य भुजांश का मान 180-30I माना जाता है। अर्थात् संपात स्थान मतलब क्रान्ति वृत्त एवं चन्द्र विमण्डल वृत्त के संपात स्थान से 180-30I आगे या पीछे अमावस्या होने पर सूर्य ग्रहण की संभावना होती है। अतः सूर्य ग्रहण का संभावित विक्षेप मान चन्द्र ग्रहण के संभावित विक्षेप मान से अधिक होता है तभी यह स्थिति संभव होती है। वस्तुतः एक ग्रहण चक्र होता है जिसमें 71 ग्रहण होते हैं। इन 71 ग्रहणों में 41 सूर्य ग्रहण होते हैं तथा 30 चन्द्र ग्रहण होते हैं। एक वर्ष में 7 ग्रहणों की उपपत्ति निम्न प्रकार से समझ सकते हैं –

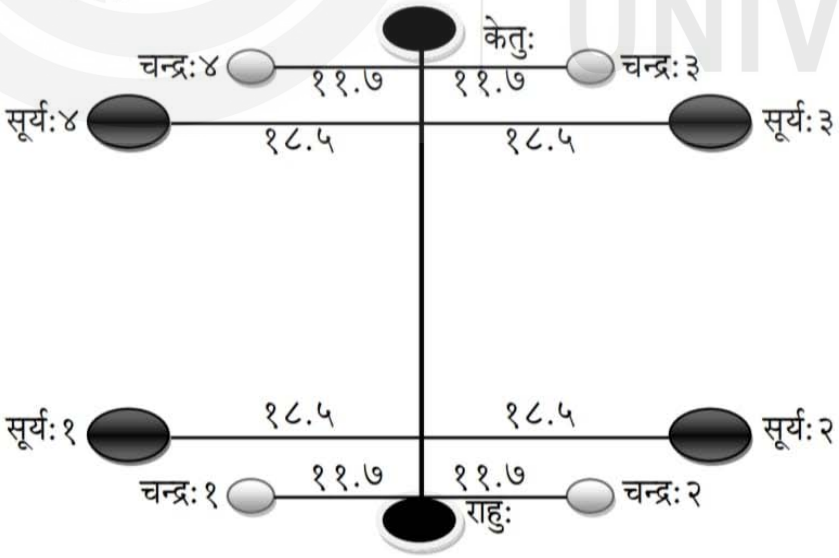

प्रस्तुत चित्र के माध्यम से आधुनिक मत के अनुसार यदि परम भुजांश मान स्वीकार करें तो –

सूर्यः १ राहुः = राहुः सूर्यः २ = सूर्यः ३ केतुः = केतुः सूर्यः ४ = १८.५

[3] सिद्धान्तशिरोमणि, पर्वसंभावाधिकार,श्लोक 3

एवं चन्द्रः १ राहुः = राहुः चन्द्रः २ = चन्द्रः ३ केतुः = केतुः चन्द्रः ४= ११.७ प्रस्तुत उदाहरण में यदि सूर्य १ स्थान पर हो तथा उसी समय अमावस्या हो जाये तब सूर्य ग्रहण होता है। एवं १५ दिन के बाद पूर्णिमा होगी जिससे चन्द्रग्रहण होगा क्योंकि पूर्णिमा संपात के अत्यधिक निकट हुई है इसीलिए पूर्वापर एवं याम्योत्तर अंतर अत्यल्प होगा। पुनः १५ दिवस के बाद अमावस्या होगी जिससे सूर्य ग्रहण भी निश्चित होगा क्योंकि संपात स्थान से सूर्य १२ अंश दूर होने के कारण। लेकिन इसके बाद की पूर्णिमा में चन्द्र ग्रहण नहीं होगा क्योंकि पूर्णिमा संपात से अत्यधिक दूर होने के कारण। अतः प्रथम स्थिति में राहूसंपात के समीप तीन ग्रहण होंगे जिसमें २ सूर्य ग्रहण एवं १ चन्द्र ग्रहण होगा। इसी प्रकार की स्थिति केतू संपात के आसन्न भी होगी जिससे उस स्थिति में भी ३ ग्रहण होंगे। यदि वर्ष के आरंभ में ही सूर्य ग्रहण हो जाये तो उस वर्ष ५ सूर्य ग्रहण तथा २ चन्द्र ग्रहण होंगे। एवं यदि वर्ष के आरंभ में चन्द्र ग्रहण हो जाये तब उस वर्ष ४ सूर्य ग्रहण एवं ३ चन्द्र ग्रहण होंगे।

3.3.3 लम्बन एवं नति विमर्श

सूर्य ग्रहण में विशेष रूप से लम्बन एवं नति का विचार किया जाता है। वस्तुतः सूर्य ग्रहण में ग्राह्य या छाद्य तथा ग्राहक या छादक की कक्षा भिन्न भिन्न होने के कारण लम्बन एवं नति की उत्पत्ति होती है। प्रस्तुत शीर्षक के माध्यम से हम लम्बन एवं नति के बारे में विस्तार से अध्ययन करेंगे।

लम्बन विमर्श -

"**लम्बते इति लम्बनम्**" अर्थात् गर्भीय एवं पृठीय ग्रहों का अंतर लम्बन होता है। सैद्धान्तिक दृष्टि से सूर्य ग्रहण में ग्राह्य एवं ग्राहक या छाद्य तथा छादक अर्थात् सूर्य एवं चंद्रमा की कक्षाएं या भ्रमण मार्ग भिन्न भिन्न होते हैं जिसके फलस्वरूप भूगर्भ के आधार पर दोनों एक स्थान पर दृष्टिगोचर होते हैं किन्तु जब हम इन्हें भूपृष्ठ के अनुसार देखते हैं तो भूगर्भ की तुलना में कुछ अंतरित दिखाई देते हैं। यही दोनों का पूर्वापर अंतर लंबन होता है। इसी का आनयन करके इसका संस्कार करके ग्रहण का साधन किया जाता है। इसके विषय में आचार्य भास्कर ने अत्यंत उत्कृष्ट परिभाषा प्रस्तुत की है यथा –

पर्वान्तेऽर्कं नतमुडुपतिच्छन्नमेव प्रपश्येद्
भूमध्यस्थो न तु वसुमतिपृष्ठनिष्ठस्तदानीम्।

तद्दृक्सूत्राद्धिमरुचिरधो लम्बितोऽर्कग्रहेऽतः
कक्षाभेदादिह खलु नतिर्लम्बनं चोपपन्नम् ।।[4]

चन्द्रग्रहण में ग्राह्य एवं ग्राहक अर्थात् चन्द्र तथा भूभा दोनों चन्द्र कक्षा में ही होते हैं इसीलिए ग्राह्य एवं ग्राहक दोनों की एक ही कक्षा में स्थिति होने के कारण लंबन तथा नति की उत्पत्ति नहीं होती है। लेकिन सूर्य ग्रहण में तो ग्राह्य एवं ग्राहक की भिन्न भिन्न कक्षा होने के कारण लंबन एवं नति की उत्पत्ति होती है। यथा -

एकत्र संस्थानवशात् कुभेन्दू पूर्णान्तकाले तु समौ नृदृष्टौ ।
संछादकच्छादकयाऽत एव न लम्बनं शीतकरग्रहेऽस्ति ।।[5]

निम्न चित्र के माध्यम से हम लम्बन के स्वरूप को समझ सकते हैं –

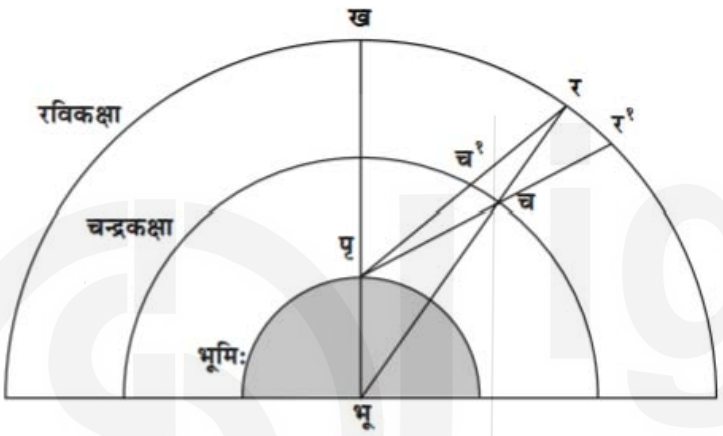

उपर्युक्त चित्र के माध्यम से लम्बन परिचय –
इस चित्र में –

भूकेन्द्र = भू
पृष्ठस्थान = पृ
खमध्य = ख
गर्भीय सूर्य = र
गर्भीय चन्द्र = च
र¹ रवि कक्षा में लम्बित पृष्ठीय चन्द्र =
च¹ चन्द्र कक्षा में लम्बित पृष्ठीय सूर्य =
रर ¹ रवि कक्षा =में लम्बन
च चर¹चन्द्र कक्षा में लम्बन =

एवं हि दृग्मण्डलगं रवीन्द्वोर्दृग्लम्बनं त्वन्तरमत्र दृष्टम् ।
स्वकक्षिकायां तु तयोस्तु यत् स्यात्तदन्तरं स्पष्टविलम्बनाख्यम् ।।[6]

[4] सिद्धान्त शिरोमणि, ग्रहण वासना श्लोक 2-3

[5] सिद्धान्ततत्वविवेकः, सूर्यग्रहणाधिकार, श्लोक - 20

[6] सिद्धान्ततत्वविवेकः, सूर्यग्रहणाधिकार, श्लोक - 113

लम्बन के दो भेद होते हैं – 1- दृग्लंबन एवं 2- स्पष्ट लम्बन। गर्भीय एवं पृष्ठीय सूर्य एवं चन्द्र का दृग्वृत्त में अंतर दृग्लंबन तथा क्रान्ति वृत्त में अंतर स्पष्ट लंबन होता है। आचार्य कमलाकर ने तो अपने ग्रंथ सिद्धान्त तत्व विवेक में लंबन को और अधिक विस्तृत रूप से विवेचन करते हुये आद्य एवं अन्य लंबन के माध्यम से लंबन के स्वरूप को स्पष्ट किया है। ऊपर स्थित चित्र के अनुसार चन्द्र कक्षा में स्थित चन्द्रबिम्बकेंद्र को स्पर्श करते हुये गर्भस्थान तथा पृष्ठस्थान से सूत्र को आगे रवि कक्षा तक वर्धित करने पर उनका रवि कक्षा में अंतर आद्य लंबन होता है तथा अपनी कक्षा में स्थित रवि केंद्र तक गए हुये गर्भ एवं पृष्ठ सूत्र का अंतर चन्द्र कक्षा में अन्य लंबन होता है। यथा –

र र[१]आद्यलम्बन =

च चर[१]अन्यलम्बन =

ये चन्द्रतश्चोर्ध्वमुखे तथाऽर्कादधोमुखे गर्भजदृग्जसूत्रे।
क्रमात्तयोस्तत्र रवीन्दुगोले यतोऽन्तरं तत्प्रथमान्यसंज्ञम् ।।[7]

इस प्रकार सिद्धान्त ग्रन्थों में लंबन का स्वरूप दर्शाया गया है। सूर्य ग्रहण में इसका आनयन करके अमान्त में इसका संस्कार किया जाता है। इसका आनयन की विधि विभिन्न ग्रन्थों में भिन्न भिन्न प्रकार से बताई गई है। लंबन का परम मान 4 घटी तक हो सकता है। क्षितिज में लंबन का मान सर्वाधिक होता है तथा खमध्य में लंबन का अभाव होता है क्योंकि उस समय गर्भीय एवं पृष्ठीय सूत्र दोनों के सरल रेखा में होते हैं।

नति विमर्श –

सूर्य ग्रहण में भिन्न भिन्न कक्षा में स्थित ग्राह्य एवं ग्राहक बिम्ब सूर्य एवं चंद्रमा भूगर्भ के अनुसार एक समान होते हुये भी भूपृष्ठ के अनुसार कुछ अंतरित होते हैं। जिससे अपनी अपनी कक्षा में लम्बित सूर्य एवं चंद्रमा के गर्भीय एवं पृष्ठीय बिम्बों के ऊपर कदम्ब प्रोत वृत्तों का गर्भीय एवं पृष्ठीय शर रूपी अंतर (याम्योत्तर-अंतर) नति होता है। इसी नति से संस्कृत शर सूर्य ग्रहण हेतु उपयुक्त होता है। इसीलिए सूर्य ग्रहण साधन में मुख्य रूप से नति का विचार किया जाता है। लेकिन चन्द्र ग्रहण में छाद्य छादक दोनों एक कक्षा में होने के कारण लंबन एवं नति का अभाव होता है - यथा आचार्य भास्कर लिखते है –

समकलकाले भूभा लगति मृगाङ्के यतस्तया म्लानम्।
सर्वे पश्यन्ति समं समकक्षत्वान्न लम्बनावनती।।[8]

सूर्य ग्रहण में ग्राह्य और ग्राहक भिन्न भिन्न कक्षा में होने के कारण भूपृष्ठ की स्थिति के अनुसार लंबन एवं नति की उत्पत्ति होती है। वस्तुतः अमान्त कालिक सूर्य एवं चंद्रमा एक कदंब प्रोत वृत्त में होते हुये भी अपने अपने विमण्डल वृत्त में होते हैं। जहाँ चन्द्रबिम्ब अपने विमण्डल वृत्त में तथा सूर्य क्रान्ति वृत्त में होते हैं एवं इनका केंद्रान्तर शर होता है। परंतु सूर्य ग्रहण काल में भूपृष्ठ स्थान से अपनी कक्षा में स्थित सूर्य के ऊपर जाते हुआ सूत्र चंद्र गोल में जहाँ लगता है वहाँ पृष्ठीय रवि होता है। अतः इसके ऊपर कदंब प्रोत वृत्त में जो अंतर होता है वह चंद्र का

[7] सिद्धान्ततत्वविवेकः, सूर्यग्रहणाधिकार, श्लोक - 53

[8] सिद्धान्त शिरोमणि गोलाध्याय ग्रहण वासना श्लोक 3

स्पष्ट शर तथा इनका गर्भीय एवं पृष्ठीय शरों का अंतर नति कहलाता है। नति के स्वरूप को हम चित्र के माध्यम से समझ सकते हैं –

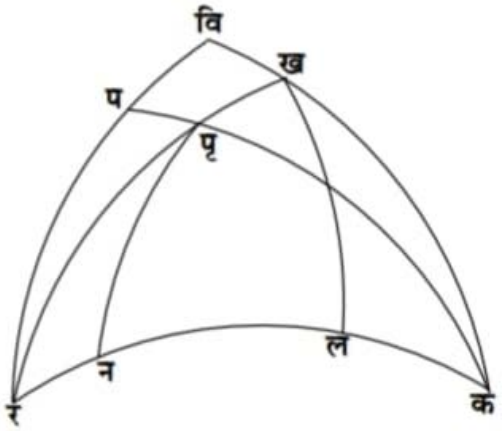

इस चित्र में –

क = कदंब स्थान
ख = खस्वस्तिक
वि = वित्रिभ
वि प र = क्रान्ति वृत्त
वि ख क = दृक्क्षेप वृत्त
पृ = चंद्र कक्षा में पृष्ठीय रवि
र = गर्भीय रवि
र पृ = दृग्लंबन
र वि = वित्रिभ और सूर्य का अंतर
र प = स्पष्ट लंबन
ख ल = दृग्लंबन
ख पृ र = दृग्वृत्त
वि ख = दृकक्षेपछाप
ख र = रवि के नतांश
क ख = दृग्गति
क ल न र = गर्भीय ग्रह के ऊपर किया गया कदंब प्रोत वृत्त
क पृ प = पृष्ठीय ग्रह के ऊपर कदंब प्रोत वृत्त
प पृ = नति

इस प्रकार नति का स्वरूप हमें सिद्धान्त ग्रन्थों में दिखाई देता है। सिद्धान्त ग्रन्थों में नति का साधन भिन्न भिन्न प्रकार से किया जाता है। वित्रिभ स्थान में नति का मान परम होता है तथा पृष्ठ क्षितिज में नति का मान अत्यल्प होता है। यथा –

वित्रिभे नतिमितिर्महत्तमाऽत्यल्पिका भवति भूमिपृष्ठजे।
वित्रिभस्य यदि कल्प्यते स्थिरा सा नतांशमितिरत्र युक्तितः ।।[9]

3.4 सूर्य ग्रहण के विभिन्न अवयव

हमने पूर्व के अध्याय में ग्रहण के कई अवयव या अवस्थाओं के बारे में अध्ययन चन्द्र ग्रहण के परिप्रेक्ष्य में किया। उन्हीं अवयवों या अवस्थाओं के बारे में हम सूर्य ग्रहण के परिप्रेक्ष्य में निम्न रूप से अध्ययन कर सकते हैं –

1- मानैक्यार्द्ध

2- ग्रास

3- स्थिति, स्थित्यर्द्ध , विमर्द

4- सूर्य ग्रहण के प्रमुख भेद

5- सूर्य ग्रहण की स्पर्श-आदि अवस्थाएँ

1- मानैक्यार्द्ध – हमने पूर्व में जाना कि ग्रहण में मानैक्यार्द्ध एक महत्वपूर्ण अवयव होता है इसी के कारण ग्रहण होगा या नहीं इसका विचार किया जाता है। ग्राह्य बिम्ब एवं ग्राहक बिंबों के योग का आधा मान मानैक्यार्द्ध होता है। सूर्य ग्रहण में सूर्य बिम्ब एवं चन्द्र बिम्ब का योग करके आधा करने से सूर्य ग्रहण संबंधी मानैक्यार्द्ध होता है। एवं इसी मानैक्यार्द्ध मान से जब शर मान कम होता है तब ग्रहण होता है अन्यथा नहीं।

2- ग्रास - पूर्व के अध्याय में हमने अध्ययन किया कि ग्रास से तात्पर्य ग्रहण के ग्रसित भाग से है अर्थात् ग्राह्य बिम्ब का जितना भाग ग्राहक बिम्ब के द्वारा ग्रसित होता है अर्थात् जितने भाग का ग्रहण होता है उसे ही ग्रास मान कहते हैं। सामान्यतया ग्रास शब्द का व्यवहार मध्य ग्रहण काल के ग्रास मान के लिए किया जाता है। सूर्य ग्रहण में अमान्त कालिक चन्द्र शर से मानैक्यार्द्ध (सूर्य बिम्ब एवं चन्द्र बिम्ब के मानों के योग का आधा मान) मान घटाने पर ग्रास मान प्राप्त होता है। एवं इसी ग्रास मान से ग्रहण के अन्य भेद अर्थात् खंड ग्रहण होगा या पूर्ण ग्रहण होगा या खग्रास ग्रहण होगा इसका निर्धारण होता है।

3- स्थिति, स्थित्यर्द्ध एवं विमर्द्ध – हमने पूर्व में विस्तार से अध्ययन किया कि ग्रहण में स्पर्श काल से मोक्ष काल पर्यन्त का काल स्थिति काल होता है, एवं स्पर्श काल से मध्य ग्रहण पर्यन्त स्पार्शिक स्थित्यर्द्ध, तथा मध्य ग्रहण से मोक्ष तक का काल तक मौक्षिक स्थित्यर्द्ध होता है। ग्रहण के सम्मीलन काल से उन्मीलन काल तक विमर्द्ध होता है एवं विमर्द्ध का आधा मान विमर्दार्द्ध होता है।

4- सूर्य ग्रहण के प्रमुख भेद –सूर्य ग्रहण के मुख्यतः तीन भेद होते हैं –

1- पूर्ण ग्रहण ,2- खण्ड ग्रहण तथा 3 – वलयाकार ग्रहण

1- पूर्ण ग्रहण – हम यह जानते हैं कि सूर्य ग्रहण में छादक चंद्रमा होता है। जब चंद्रमा अपनी कक्षा में भ्रमण करता हुआ सूर्य बिम्ब के सीध में होता है, तथा पूर्ण रूप से सूर्य

[9] सिद्धान्त तत्व विवेक की टिप्पणी में।

को आच्छादित कर लेता है तब ग्रहण के इस भेद को पूर्ण ग्रहण कहते हैं। किन्तु सामान्यत: सूर्य का बिम्ब बड़ा होने के कारण तथा चंद्रमा का बिम्ब सूर्य की अपेक्षा छोटा के कारण यह स्थिति तब ही बन सकती है जब सूर्य अपने उच्च पर हो तथा चंद्रमा अपने नीच पर हो और उसी समय सूर्य ग्रहण हो क्योंकि सूर्य उच्च पर होने पर दृष्टि के कारण वह हमें छोटा तथा चंद्रमा नीच में होने के कारण बड़ा दिखाई देता है इसी अवस्था में पूर्ण सूर्य ग्रहण हो सकता है। पूर्ण सूर्य ग्रहण बहुत ही कम होता है।

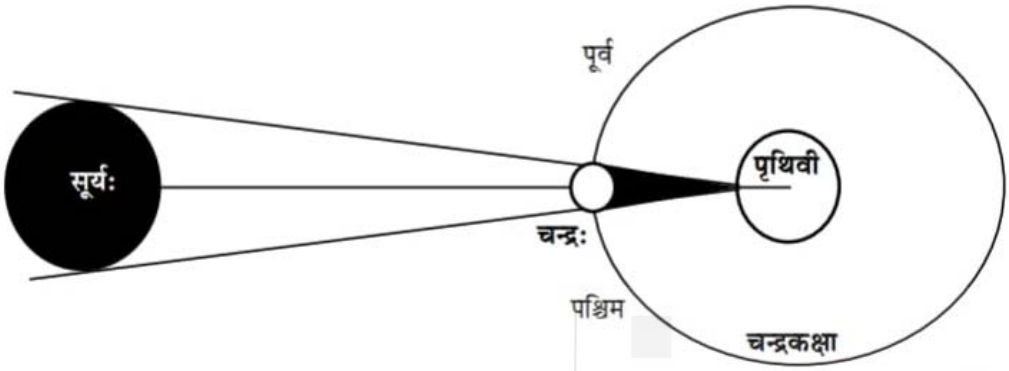

2- **खण्ड ग्रहण** – जब चंद्रमा बिम्ब अपनी कक्षा में भ्रमण करता हुआ सूर्य के कुछ भाग को स्पर्श करते हुये निकल जाता है तब खंड सूर्य ग्रहण होता है। सभी पूर्ण ग्रहण या वलयाकार ग्रहण का आरंभ खंड ग्रहण के रूप में ही होता है। अर्थात् चंद्रमा का कुछ भाग ही ग्रसित होता है उस भेद को खंड ग्रहण कहते है। यथा –

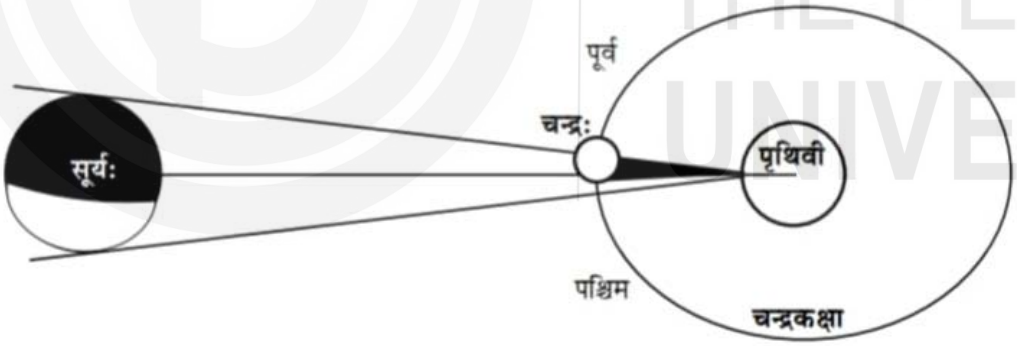

3- **वलयाकार ग्रहण** – इस ग्रहण में सूर्य बिम्ब में श्याम वर्णीय चन्द्र अंतर्निहित होता है। किन्तु सूर्य बिम्ब बड़ा होने के कारण पूर्ण रूप से चंद्रमा सूर्य को आच्छादित नहीं करता है जिससे चंद्र बिम्ब के सभी ओर से उज्ज्वल सूर्य बिम्ब की किरणें दिखाई देती ग्रहण की यह स्थिति वलय अर्थात् चूड़ी के समान दिखाई देती है इसी को वलयाकार ग्रहण कहा जाता है।

यथा –

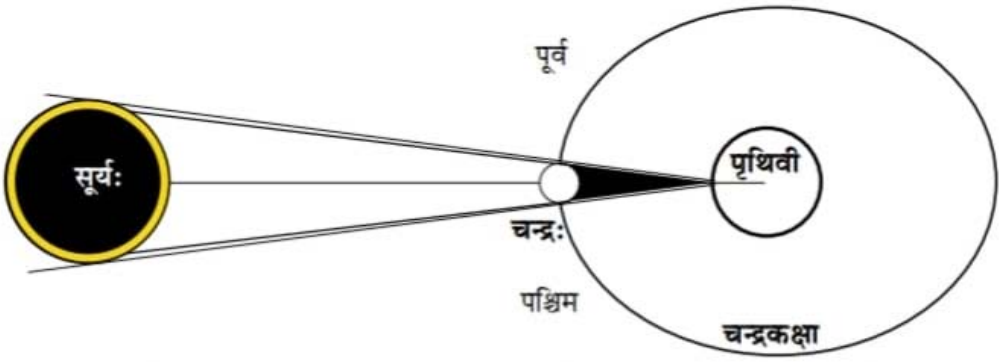

5- **सूर्य ग्रहण की स्पर्श-आदि अवस्थाएँ** - हमने पूर्व में अध्ययन किया कि ग्रहण की अवधि में ग्रहण की कई अवस्थाएँ होती है। जब सूर्य का पूर्ण ग्रहण होता है तब ग्रहण की पाँच अवस्थाएँ होती है – 1- स्पर्श, 2- सम्मीलन, 3- मध्य ग्रहण, 4- उन्मीलन, एवं 5- मोक्ष। एवं जब खण्ड ग्रहण होता है वैसी स्थिति में ग्रहण की केवल तीन अवस्थाएँ होती है -1- स्पर्श, 2 – मध्यग्रहण, 3- मोक्ष। खंड ग्रहण में ग्रहण की सम्मीलन एवं उन्मीलन अवस्था नहीं होती है। इनका विस्तृत विचार हम निम्नवत कर सकते हैं –

सूर्य ग्रहण की स्पर्श आदि अवस्थाएँ - हमने जाना कि जब ग्राहक बिम्ब (छादक बिम्ब) ग्राह्य बिम्ब (छाद्य बिम्ब) को स्पर्श करता है तब ग्रहण की स्पर्श अवस्था होती है। सूर्य ग्रहण में छादक चन्द्र एवं छाद्य बिम्ब सूर्य होता है। जब चंद्रमा अपनी नैसर्गिक गति से पूर्वाभिमुख भ्रमण करते हुये जब सूर्य को पश्चिम भाग से स्पर्श करता है तब स्पर्श के दौरान चंद्र बिम्ब का भाग सूर्य बिम्ब को स्पर्श करता है अर्थात् चंद्रमा की पूर्वपाली एवं सूर्य की पश्चिम पाली का जब मिलन होता है तब सूर्य ग्रहण की यह अवस्था स्पर्श अवस्था होती है। एवं ग्राह्य बिम्ब का पूर्ण भाग अर्थात् चन्द्र बिम्ब पूर्ण रूप से सूर्य को आच्छादित कर लेता है तो वह अवस्था या काल सम्मीलन काल होता है। अर्थात् चन्द्र बिम्ब की पश्चिम पाली एवं सूर्य बिम्ब की पश्चिम पाली का जब मिलन होता है, तब ग्रहण की यह अवस्था सम्मीलन अवस्था होती है। एवं जब चन्द्र बिम्ब तथा सूर्य बिम्ब का केंद्र एक सरल रेखा में होता है तब ग्रहण का मध्य काल होता है। अर्थात् ग्राह्य और ग्राहक बिंबों के केन्द्रों का योग होना मध्य ग्रहण कहलाता है। अमान्त काल ही सूर्यग्रहण का मध्य ग्रहण काल होता है। तथा जब चंद्रमा सूर्य को आच्छादित करते हुये आगे जाता है अर्थात् मोक्ष काल की ओर जब चंद्र बिम्ब बढ़ता है अथवा चंद्रमा की पूर्व पाली एवं सूर्य की पूर्व पाली का मिलन काल उन्मीलन होता है। एवं जब चन्द्र बिम्ब सूर्य बिम्ब को आच्छादित कर बाहर हो जाता है तब वह काल मोक्ष काल होता है अर्थात् चन्द्र बिम्ब की पश्चिम पाली एवं सूर्य बिम्ब की पूर्व पाली के मिलन की अवस्था सूर्य ग्रहण की मोक्ष अवस्था होती है। इन अवस्थाओं को प्राप्त करने के लिए हम मध्य ग्रहण काल के साधन तथा स्थित्यादि के साधन से भी ज्ञात कर सकते है जैसे मध्य ग्रहण काल से स्थित्यर्द्ध घटाने पर ग्रहण का स्पर्श काल आता है एवं मध्य ग्रहण में स्थित्यर्द्ध जोड़ने पर मोक्ष काल। इसी प्रकार मध्य ग्रहण से विमर्दार्द्ध घटाने से सम्मीलन काल, तथा मध्य ग्रहण काल में विमर्दार्द्ध जोड़ने पर उन्मीलन काल आ जाता है। यथा चित्र के माध्यम से सूर्यग्रहण की स्पर्शादि अवस्थाएँ –

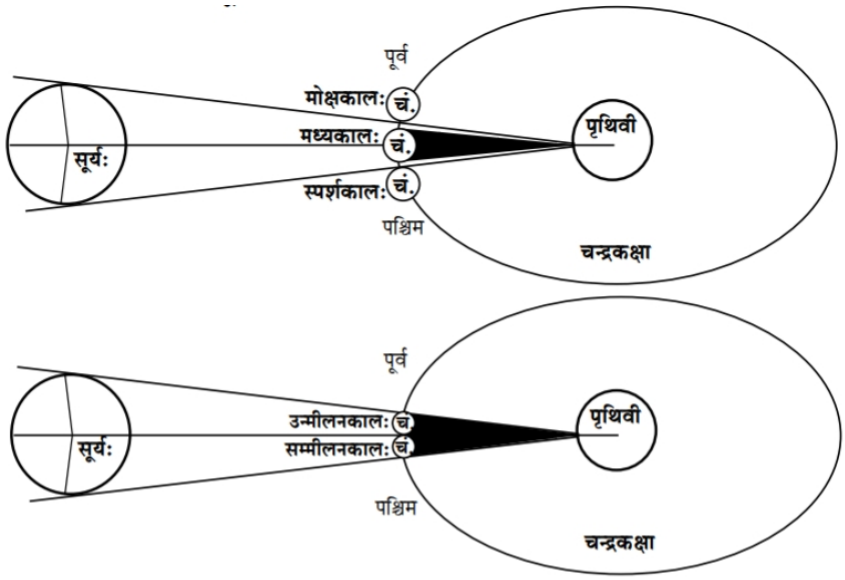

यहाँ एक बात और विचारणीय होती है कि चंद्रमा अर्थात् ग्राहकबिम्ब अपनी कक्षा में सूर्य की अपेक्षा तीव्र गति से पूर्वाभिमुख भ्रमण करते हुये सूर्य के पश्चिमी भाग को स्पर्श करता है अतः सूर्य ग्रहण में स्पर्श पश्चिम दिशा में तथा मोक्ष पूर्व दिशा में होता है।

3.4.1 सूर्य ग्रहण साधन की गणितीय प्रक्रिया

हमने यह जाना कि ग्रहों के साधन की गणित प्रक्रिया ज्योतिष शास्त्र के सिद्धान्त स्कन्ध में बताई गई है। ग्रहों के स्पष्टीकरण प्रक्रिया के आधार पर ही ग्रहण के गणित का भी साधन किया जाता है। प्रायः सिद्धान्त के सभी ग्रन्थों में ग्रहों के साधन की प्रक्रिया तथा ग्रहण के गणित की प्रक्रिया बताई गई है। उन्हीं ग्रन्थों में से ग्रहलाघव भी एक महत्वपूर्ण करण ग्रंथ है जिसमें ग्रहण के गणित की विधि बताई गई है। हम ग्रह स्पष्टीकरण की सामान्य प्रक्रिया के साथ सूर्य ग्रहण की गणित प्रक्रिया ग्रहलाघव के नियमानुसार सूत्र रूप में जानेंगे।

लम्बन साधन[10]

सर्वप्रथम अमान्तकालिक लग्न का साधन किया जाता है उसके पश्चात–

अमान्तकालिक लग्न – 3 राशि = वित्रिभलग्न

वित्रिभलग्न की क्रान्ति = $\frac{24 \text{ X वित्रिभलग्न के भुजांश}}{90}$

वित्रिभलग्न के क्रान्त्यंश ± अक्षांश = नतांश

(नतांश / 22)2 = फल

---

[10] लग्नं दर्शान्ते त्रिभोनं पृथक्स्थं तत् क्रान्त्यंशैः संस्कृतोऽक्षो नतांशाः।
तद् द्विद्वयंशो वर्गितश्चेद् द्विकोर्ध्वोऽधोऽसौ ट्यूनः खण्डितस्तद्युतः सः।।
सार्को हारः स्यात् त्रिभोनोदयार्क-विश्लेषांशाशांशहीनघ्नशक्राः।
हराप्ताः स्याल्लम्बनं नाडिकाद्यं तिथ्यां स्वर्णं वित्रिभेऽर्काधिकोने।। ग्रहलाघवम्, सू.ग्र.अ., श्लो.
१-२

यहाँ फल यदि 2 से कम हो तो -

12 + फल = हार

यदि फल 2 से अधिक हो तो

फल – 2 = अंतर फल

(अंतरफल /2) 2 + 12 = हार

14 – (वित्रिभलग्न S (अंतरांश) सूर्य / 10 X (वित्रिभलग्न – (सूर्य/ 10)) = लब्धि

हार / लब्धि = घटिकादिकलम्बन

घटिकादिक लम्बन ± गर्भीय अमान्त = ग्रहण का मध्यकाल

यदि स्पष्ट सूर्य से वित्रिभ लग्न अधिक हो तब अमान्त काल में लंबन धन किया जाता अन्यथा ऋण किया जाता है।

शर साधन[11]–

घटिकादिक लम्बन X 13 = कलादिक लम्बन

व्यगु ± कलादिक लम्बन = लम्बन संस्कृत व्यगु (यहाँ भी तिथि के अनुसार संस्कार किया जाता है)

लम्बनसंस्कृत व्यगु X / 07 = 11 अंगुलदिक शर

नतांश साधन[12] –

घटिकादिक लम्बन X 6 = अंशादि लम्बन

अंशादि लम्बन ± त्रिभोनलग्न = लम्बनसंस्कृतत्रिभोनलग्न

त्रिभोन लग्न की क्रांति ± अक्षांश = नतांश

नति साधन[13]-

– 18) नतांश (10 /X नतांश / ÷ 6/18– 18) – नतांश (10/X नतांश 10 / = 10 नति

शरसाधन[14] –

नति ± शर =स्पष्टशर (दोनों एक दिशा में हो तो योग तथा भिन्न दिशा में हो तो अंतर)

स्पष्ट शर के आधार चन्द्र ग्रहण की प्रक्रिया के अनुसार ही जिसका अध्ययन हमने पूर्व के

---

[11] त्रिकुनिघ्नविलम्बनं कलास्तत्सहितोनस्तिथिवद्व्यगुः शरोऽतः । ग्र.ला. सू.ग्र.अ., श्लो. २१/२

[12] अथ षड्गुणलम्बनं लवास्तैर्युगयुग्वित्रिभत पुनर्नतांशाः|| ग्र.ला. सू.ग्र.अ., श्लो. ३

[13] दशहतनतभागोनाहताष्टेन्दवस्तद्रहितसधृतिलिप्तैः षड्भिराप्तास्त एव ।
स्वदिगिति नतिरेतत्संस्कृतः सोऽंगुलादिः || ग्र.ला. सू.ग्र.अ., श्लो. ३१/२

[14] नतिरेतत्संस्कृतः सोङ्गुलादिः स्फुट इषुरमुतोऽत्र स्यात् स्थितिच्छन्नपूर्वम्। ग्र.ला., सू.प्र.अ.,

अध्याय में किया के अनुसार सूर्य बिम्ब, चन्द्र बिम्ब, मानैक्यार्द्ध, ग्रास एवं स्थित्यादि अवयवों का साधन किया जाता है।

स्पर्श एवं मोक्ष काल का साधन[15] –

स्थिति X = 6 अंशादि स्थिति

त्रिभोनलग्न – अंशादि स्थिति स्पर्श त्रिभोन लग्न =

स्पर्शत्रिभोन लग्न का घटिकादिक लंबन का साधन पूर्वोक्त प्रकार से किया जाता है।

स्पर्शकालीय घटिकादिक लंबन – दर्शान्तघटी) ± मध्य स्थिति घटीस्पर्शकाल = (

इसी प्रकार –

त्रिभोन लग्न मोक्ष त्रिभोन लग्न = अंशादि स्थिति +

मोक्ष त्रिभोन लग्न का घटिकादिक लंबन पूर्वोक्त प्रकार से साधित किया जाता है

मोक्ष कालिक लंबन मोक्षकाल = (मध्य स्थिति घटी + दर्शान्तघटी) ±

स्थिति के आधार पर जिस प्रकार स्पर्श एवं मोक्ष काल का साधन किया जाता है उसी प्रकार विमर्द के आधार पर सम्मीलन काल तथा उन्मीलन काल का साधन किया जाता है।[16]

इस प्रकार से ग्रहलाघव ग्रंथ के अनुसार ग्रहण का गणित किया जाता है। यहाँ ग्रह स्पष्टीकरण का साधन पंचांग की सहायता से प्रसिद्ध विधि के अनुसार बताया गया है। ग्रह स्पष्ट यदि सही होगा तो ग्रहण का ग्रहलाघवीय गणित भी अधिक स्पष्ट आता है अर्थात् वर्तमान में अत्यंत कम अंतर देखने को मिलता है। जो कि ज्योतिष शास्त्र की वैज्ञानिकता एवं महत्व को दर्शाता है, क्योंकि ग्रहण जैसे श्रम साध्य विषय एवं वर्तमान में अनेक यंत्रों के माध्यम से इसके काल का आनयन किया जाता है, जिसमें बहुत अधिक धन भी व्यय होता है। इन्हीं सब कारणों से सभी लोग ज्योतिष शास्त्र को प्रत्यक्ष शास्त्र तथा विज्ञान के रूप में जानते हैं।

3.5 सारांश

प्रस्तुत इकाई के माध्यम से हमने सूर्य ग्रहण को विस्तृत रूप से जाना। हमने जाना कि आकाशस्थ पिंडों का एक दूसरे से परस्पर अवरोध या ग्राह्य एवं ग्राहक बिंबों का परस्पर पूर्वापर और याम्योतर अंतर शून्य होने पर ग्रहण होता है। हमने जाना कि मुख्यतः ग्रहण दो प्रकार का होता है 1- चंद्रग्रहण एवं दूसरा सूर्यग्रहण। चन्द्रग्रहण शराभाव पूर्णिमान्त को होता है एवं सूर्य ग्रहण शराभाव अमान्त को होता है। सूर्यग्रहण में सूर्य छाद्य या ग्राह्य तथा छादक चंद्रमा होता है। सूर्य ग्रहण में ग्राह्य तथा ग्राहक भिन्न भिन्न कक्षा में होने के कारण लंबन तथा नति की उत्पत्ति होती है। सैद्धान्तिक दृष्टि से सूर्य ग्रहण में ग्राह्य एवं ग्राहक या छाद्य तथा छादक अर्थात् सूर्य एवं चंद्रमा की कक्षाएं या भ्रमण मार्ग भिन्न भिन्न होते हैं जिसके फलस्वरूप भूगर्भ के के आधार पर दोनों एक स्थान पर दृष्टिगोचर होते हैं किन्तु जब हम इन्हें भूपृष्ठ के अनुसार देखते हैं तो भूगर्भ की तुलना में कुछ अंतरित दिखाई देते हैं। यही दोनों का पूर्वापर अंतर लंबन होता है।

[15] स्थितिरसहतिरंशा वित्रिभं तैः पृथक्स्थं रहितसहितमाभ्यां लम्बने ये तु ताभ्याम्।
स्थितिविरहितयुक्तः संस्कृतो मध्यदर्शः क्रमश इति भवेतां स्पर्शमुक्त्योस्तु कालौ॥ ग्र.ला., सू.ग्र.अ., श्लो. ५

[16] मर्दादेवं मीलनोन्मीलने स्तो.....। ग्र.ला. सू.ग्र.अ., श्लो. ५१ / २

तथा सूर्य ग्रहण में भिन्न भिन्न कक्षा में स्थित ग्राह्य एवं ग्राहक बिम्ब सूर्य एवं चंद्रमा भूगर्भ के अनुसार एक समान होते हुये भी भूपृष्ठ के अनुसार कुछ अंतरित होते हैं। जिससे अपनी अपनी कक्षा में लम्बित सूर्य एवं चंद्रमा के गर्भीय एवं पृष्ठीय बिम्बों के ऊपर कदम्ब प्रोत वृत्तों का गर्भीय एवं पृष्ठीय शर रूपी अंतर (याम्योत्तर-अंतर) नति होता है। सूर्य ग्रहण उसी अमान्त को होता जब भुजांश 09 अंश से कम होता है। अर्थात् मानैक्यार्द्ध मान से जब शर मान कम होता है वैसी अमान्त में ही ग्रहण होता है। प्रत्येक अमान्त में नहीं। सूर्यग्रहण के सामान्यतः तीन भेद होते हैं – खंड ग्रहण, वलयाकार एवं पूर्ण ग्रहण। पूर्ण ग्रहण होने पर ग्रहण की पाँच अवस्थाएँ होती है – स्पर्श, सम्मीलन, मध्य ग्रहण, उन्मीलन एवं मोक्ष। तथा खंड ग्रहण होने की स्थिति में केवल ग्रहण की तीन अवस्थाएँ ही होती हैं –स्पर्श , मध्यग्रहण एवं मोक्ष। सूर्य ग्रहण के गणित की प्रक्रिया प्रायः सभी सिद्धान्त ग्रन्थों में प्राप्त होती है उन्हीं में से ग्रहलाघव के अनुसार सूर्यग्रहण का साधन सूत्र हमने प्रस्तुत इकाई के माध्यम से जाना। तथा यह भी जाना कि यदि ग्रह स्पष्ट जितना शुद्ध होगा उतना ही ग्रहण का काल भी सही आता है। सूर्य ग्रहण के फल आदि का विचार भी शास्त्रों में किया गया है जिसका अध्ययन हम अग्रिम अध्यायों में करेंगे। साथ ही साथ हमने प्रस्तुत इकाई के माध्यम से एक वर्ष में कैसे 7 ग्रहण हो सकते हैं इसके सैद्धान्तिक कारण को भी जाना। प्रस्तुत इकाई के माध्यम से सूर्य ग्रहण के विभिन्न सैद्धान्तिक विषयों को जाना। निश्चित रूप से प्रस्तुत इकाई के माध्यम से हमने सूर्य ग्रहण के बारे में विस्तार से ज्ञान प्राप्त किया।

3.6 शब्दावली

मानैक्यार्द्ध – छाद्य एवं छादक बिम्बों के योग का आधा।

स्थिति काल – स्पर्श काल से मोक्ष काल तक की ग्रहण की अवस्था।

शराभाव – ग्राह्य ग्राहक बिंबो का याम्योतर (उत्तर-दक्षिण) अंतर शून्य होना। ग्राह्य ग्राहक बिंबो का केंद्रान्तर शून्य होना।

पूर्णिमा – सूर्य और चंद्रमा के बीच 180^0 का अंतर।

चंद्र विमण्डल = चंद्रमा का भ्रमण मार्ग।

क्रान्ति मण्डल = सूर्य का भ्रमण वृत्त (मार्ग)।

विमर्द = सम्मीलन काल से उन्मीलन काल तक की ग्रहण की अवस्था।

खमध्य = भूकेंद्र से स्वदेश को स्पर्श करता हुआ सूत्र आकाश में जहां लगता है उसे खमध्य कहा जाता है।

दृग्वृत्त = ग्रह स्थान और खमध्य में जाने वाले वृत्त को दृग्वृत्त कहते हैं।

दृक्क्षेप वृत्त = लग्न बिन्दु से 90 अंश की त्रिज्या से निर्मित वृत्त को दृक्क्षेप वृत्त कहते हैं।

3.7 संदर्भ ग्रंथ

1) भारतीय ज्योतिष - लेखक - डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री, भारतीय ज्ञानपीठ संस्करण वर्ष 2002

2) भारतीय कुण्डली विज्ञान - लेखक :- मीठालाल हिम्मतराम ओझा देवर्षि प्रकाशन

वाराणसी, प्रकाशन वर्ष 2008 संवत् 2064

3) सूर्यसिद्धान्तः - टीकाकार – श्रीकपिलेश्वरशास्त्री, प्रकाशक - चौखम्भा संस्कृत भवन, वाराणसी -221001

4) मुहूर्तचिन्तामणि - प्रो० रामचन्द्रपाण्डेय, चौखम्बा कृष्णदास अकादमी ,के० 37/118, गोपाल मन्दिर लेन (गोपाल मन्दिर के उत्तरी फाटक पर) पो० बा० नं० 118, वाराणसी-221001 (भारत)

5) ज्योतिष-सिद्धान्त-मञ्जूषा - लेखक - प्रो० विनयकुमारपाण्डेयः, चौखम्भा सुभारती प्रकाशन, वर्ष 2013 (भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक), के 37-117 गोपाल मन्दिर लेन पां. बा.न. 1129, वाराणसी , 22101

6) सिद्धान्तशिरोमणि - व्याख्याकार मुरलीधर ठाकुर कृत, चौखम्बा प्रकाशन के० 37/118, गोपाल मन्दिर लेन गोलघर (मैदागिन) के पास)वाराणसी 221001

7) कल्याण –ज्योतिषतत्त्वांक, गीताप्रेस, गोरखपुर , वर्ष 88 संख्या : 1

8) बृहद्दैवज्ञरंजन – पंडित रामदीन, श्रीखेमराज श्री कृष्णदास प्रकाशन, बंबई, सन् -1999

9) गोलपरिभाषा – डा० कमलाकांतपाण्डेय, शारदा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, सन् - 2007

9) सिद्धान्ततत्वविवेक – कमलाकरभट्ट, डा कृष्णचंद्र द्विवेदी, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी सन् 1995

10) सूर्यग्रहणम् – डा कृष्णचंद्र द्विवेदी, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी सन्-1997

11) ग्रहलाघवम – गणेश दैवज्ञ, कपिलेश्वर चौधरी, चौखंभा-संस्कृत-संस्थान, वाराणसी सन -2004

11) केतकी ग्रहगणित – भारतीय विद्याप्रकाशन , वाराणसी , दिल्ली

12) सूर्य ग्रहण गणित – पं० कल्याण दत्त शर्मा, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी सन्- 1998

सहायक पञ्चाङ्ग –

1- विश्वपञ्चाङ्गम् – कशीहिन्दूविश्वविद्यालय, वाराणसी,

2- श्री महामहोपाध्याय बापूदेवशास्त्री, दृक्सिद्धपञ्चाङ्ग, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी।

3- ऋषीकेशपंचांग –विक्रमपंचांगप्रकाशन, वाराणसी

3.8 बोध/ अभ्यास प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नो का उत्तर विस्तृत रूप से लिखिए –

1 सूर्यग्रहण का सामान्य परिचय लिखिए।

2 लंबन के बारे में विस्तार से लिखिए।

3 नति के बारे में विस्तार से लिखिए।

4 सूर्यग्रहण के विचारणीय बिन्दुओं के बारे में लिखिए।

5 एक वर्ष में ग्रहणों की संख्या के बारे में विस्तार से बताइये।

6 सूर्यग्रहण की गणितीय प्रक्रिया को लिखिए।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY